जीव विज्ञान

डी.एन.ए. : सुनहरी कुंडली

पी. बालाराम

हम डीऑक्सीराइबो न्यूक्लिक एसिड (डी.एन.ए.) के लवण की संरचना सुझा रहे हैं। इस संरचना में कुछ ऐसे अनोखे गुण हैं जिनका जैविक महत्व है। हम यह बात भी देखने से नहीं चूके हैं कि हमने जिस तरह की जोड़ियों की बात कही है, उससे जिनेटिक सामग्री की प्रतिलिपि बनने की विधि भी स्पष्ट हो जाती है।

-जे.डी. वॉट्सन और एफ.एच.सी. क्रिक, नेचर, 1953

बैंगलोर की सड़क पर ट्राफिक जाम में मेरा ध्यान एक अनोखी बस पर गया। इस बस पर दो चित्र पुते हुए थे। ये चित्र काफी परिचित से लग रहे थे, और थे भी। ये दरअसल रसायन व जीव विज्ञान से सम्बंधित चित्र थे - एक था केकुले द्वारा प्रतिपादित बेंज़ीन की षट्कोण संरचना का चित्र और दूसरा था वॉट्सन व क्रिक द्वारा प्रतिपादित डी.एन.ए. की दोहरी कुण्डली का चित्र। डी.एन.ए. का यह चित्र लगभग वैसा ही था जैसा वॉट्सन और क्रिक ने अपने 1953 के महत्वपूर्ण शोध पत्र में प्रस्तुत किया था। यह वह पर्चा था जिसे कई लोग जीव विज्ञान में एक क्रांति का अग्रदूत मानते हैं।

वाहनों के धुएं और भोंपुओं के शोरगुल के बीच भी मेरा ध्यान 1960 के दशक में चला गया, जब मैंने पहली बार डी.एन.ए. के बारे में सुना था। उस समय मैं आई.आई.टी. कानपुर में रसायन शास्त्र में स्नातकोत्तर छात्र था। मैंने उससे पहले डी.एन.ए. के बारे में कभी नहीं सुना था। वह तो 1968 में कभी मेरे हाथ *एटलांटिक मंथली* की एक प्रति लग गई। उसमें जे.डी. वॉट्सन की पुस्तक *दी डबल हेलिक्स* को क्रमशः प्रकाशित किया जा रहा था। डी.एन.ए. का अणु तो पृष्ठभूमि में था, वॉट्सन ने इस अणु की संरचना पता करने के लिए चल रही दौड़ का अत्यंत पठनीय वर्णन किया था। इस दौड़ का अंत नोबल पुरस्कार में हुआ था। उस वर्ष ही हरगोविन्द खुराना को मार्शल निरेनबर्ग और रॉबर्ट हॉली के साथ पोलीन्यूक्लिओटाइड के संश्लेषण के लिए नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ था। यह संश्लेषण जिनेटिक कोड को समझने में बहुत मददगार साबित हुआ था। खुराना भारतीय मूल के थे; लिहाज़ा भारत में डी.एन.ए. एक परिचित नाम बन गया। खुराना द्वारा संश्लेषण किए जाने से पहले यह अणु रसायन शास्त्र के दायरे से बाहर ही रहा। बहरहाल, 1968 में शायद ही किसी ने सोचा होगा कि डी.एन.ए. हमारे ज़माने का सबसे जाना-माना अणु बन जाएगा।

डी.एन.ए. की कथा 1869 में शुरू हुई थी। इस वर्ष फ्राइडरिश मीशेर ने मवाद की कोशिकाओं से 'न्यूक्लीन' नामक पदार्थ अलग किया। इसके लगभग 60 साल बाद फ्रेडरिक ग्रिफिथ ने न्यूमोकॉकस में 'तब्दीली' का ब्यौरा दिया; उन्होंने बताया कि किसी जीव के लक्षणों को एक 'परिवर्तन तत्व' ('ट्रांसफॉर्मिंग प्रिंसिपल') द्वारा बदला जा सकता है। तब तक जिनेटिक्स एक विज्ञान के रूप में स्थापित हो चुका था और 'जीन' को अनुवांशिकता की इकाई माना जाने लगा था। इर्विन श्रोडिंजर ने अपनी व्याख्यान माला *'जीवन क्या है?'* में जीन को एक 'अनावर्त्त, ठोस' की संज्ञा दी थी। यह 1943 की बात है।

लगभग इसी समय (1944 में) एक अत्यंत साधारण शीर्षक वाला शोध पत्र *जर्नल ऑफ एक्सपेरिमेंटल मेडिसीन* में प्रकाशित हुआः *'न्यूमोकॉकल की किस्मों में बदलाव को प्रेरित करने वाले पदार्थ की प्रकृति।'* इस शोध पत्र के लेखक थे ओस्वाल्ड एवरी, कोलीन मैक्लिऑड और मैक्लीन मेकार्टी। यह शोध पत्र जीव विज्ञान में उथल-पुथल की शुरुआत का द्योतक था। इस शोध पत्र का निष्कर्ष साफ थाः 'प्रमाणों से स्पष्ट है कि डीऑक्सीराइबोज़ किस्म का न्यूक्लिक एसिड ही न्यूमोकॉकस में बदलावों के लिए ज़िम्मेदार है।' दूसरे शब्दों में, एवरी व साथियों का निष्कर्ष था कि जीन डी.एन.ए. से बने होते हैं। इस निष्कर्ष की पुष्टि